

खड़ी बोली के साहित्य निर्माण में भारतेन्दु हरिश्चंद्र की भाषाई नीति

रोहित मिश्रा

शोधार्थी, (पीएचडी)

हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

हिंदी साहित्य में आधुनिक काल की शुरुआत भारतेन्दु युग से मानी जाती है। भारतेन्दु युग से पूर्व का साहित्य मुख्यतः काव्य विधा तथा ब्रज भाषा में लिखा जा रहा था, जिसमें कहीं-कहीं खड़ी बोली के शब्दों का प्रयोग दिखाई देता है क्योंकि खड़ीबोली उक्त समय तक जन भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। परंतु फिर भी खड़ी बोली को साहित्य की भाषा के रूप में सम्मान प्राप्त नहीं था। खड़ीबोली को यह स्थान सर्वप्रथम 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के माध्यम से प्राप्त हुआ, जहां अनुवाद के रूप में खड़ी बोली की प्रारंभिक गद्य रचनाएं प्रकाश में आईं। इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है "संवत् 1860 में फोर्ट विलियम कॉलेज (कलकत्ता) के हिंदी-उर्दू अध्यापक जान गिलक्राइस्ट ने देशी भाषा की गद्य पुस्तकें तैयार कराने की व्यवस्था की तब उन्होंने उर्दू और हिंदी दोनों के लिए अलग-अलग प्रबंध किया। इसका मतलब यही है कि उन्होंने उर्दू से स्वतंत्र हिंदी खड़ी बोली का अस्तित्व भाषा के रूप में पाया। फोर्ट विलियम कॉलेज के आश्रय में लल्लूलाल जी गुजराती ने खड़ी बोली के गद्य में 'प्रेमसागर' और सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' लिखा। अतः खड़ी बोली गद्य को एक साथ आगे बढ़ाने वाले चार महानुभाव हुए हैं- मुंशी सदासुख लाल, सैयद इंशाअल्ला खाँ, लल्लूलाल और सदल मिश्रा।"

स्पष्ट है कि खड़ीबोली के निर्माण में पं. लल्लूलाल, पं. सदल मिश्र, मुंशी सदासुख लाल तथा इंशा अल्ला खाँ की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इन रचनाकारों में इंशा अल्लाह खाँ के अतिरिक्त अन्य तीनों ने 'खड़ीबोली' का प्रयोग अनुवाद के रूप में किया था जिस कारण शुद्ध साहित्यिक भाषा के रूप में इस समय तक ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया जा रहा था। साहित्य की भाषा बनने के लिए 'खड़ी बोली' का यह संघर्ष 'भारतेन्दु युग' में समाप्त होता है जहां गद्य की भाषा के रूप में 'खड़ीबोली' को स्वीकार किया गया।

'भारतेन्दु युग' को मध्यकाल तथा आधुनिक काल का संधिस्थल माना जाता है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र इस युग के अग्रणी लेखक थे जिन्होंने न केवल साहित्यिक भाषा के रूप में 'खड़ी बोली' को स्थापित किया बल्कि साहित्य को नवीन विधाओं से भी अवगत कराया। निबंध, आलोचना, पत्रकारिता, अनुवाद, नाटक, कहानी, उपन्यास, आदि अनेक विधाओं ने इस युग में अपना प्रारंभिक स्वरूप प्राप्त किया। इन सभी विधाओं के माध्यम से भारतेन्दु युग के रचनाकारों ने साहित्य को समाज से जोड़ने का महत्वपूर्ण प्रयास किया, जिसमें लोक में प्रचलित शब्दों का साहित्य में प्रयोग कर 'खड़ी बोली' का संवर्धन और विकास भी किया जा रहा था। पद्य भाषा के रूप में खड़ी बोली को स्थान न मिलने के बावजूद इस युग के रचनाकारों ने गद्य भाषा के रूप में 'खड़ी बोली' को निर्मित किया और उसे लोकप्रिय बनाया। इसमें सबसे प्रमुख योगदान भारतेन्दु हरिश्चंद्र का था जिन्होंने तत्सम शब्दों के स्थान पर तद्भव शब्दों का प्रयोग करना आरंभ किया और क्षेत्रीय बोलियों के शब्दों को भी साहित्य में यथासंभव प्रयोग किया। इस संबंध में डॉ. अमरनाथ ने लिखा है कि भारतेन्दु की भाषा में "तद्भव और देशज शब्दों एवं मुहावरों का प्राधान्य है और दूसरी ओर जनजीवन में घुले हुए विदेशी शब्दों से भी कोई खास परहेज नहीं है।"² जो साहित्य भारतेन्दु युग से पूर्व उच्च तथा शिक्षित वर्ग तक सीमित था, वह भारतेन्दु युग में जनसामान्य के मध्य तक स्थापित हो गया, जिसका एक प्रमुख कारण भारतेन्दु हरिश्चंद्र की भाषाई

नीति थी। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने भाषा का महत्व समझते हुए उसे राष्ट्रीयता और समाज का प्रमुख अंग माना। हालांकि भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने स्वयं काव्य भाषा के रूप में ब्रज भाषा को अपनाया है और खड़ी बोली का प्रयोग केवल गद्य साहित्य तक सीमित रखा है इसलिए उनकी भाषाई नीति में केवल गद्य साहित्य से संबंधित चर्चा की जाएगी। भारतेन्दु हरिश्चंद्र की यह स्पष्ट मान्यता थी कि राष्ट्रीयता और सामाजिक अस्मिता का प्रमुख अंग भाषा है, इसलिए वे जातीय पहचान को 'निज भाषा' से जोड़ते हैं। इस संबंध में उन्होंने कहा है-

"निज भाषा उन्नति अहै सब भाषा को मूल।

बिन निज भाषा ज्ञान के मिटै न हिय को मूल।"³

अर्थात् निज भाषा की उन्नति के बिना किसी भी समाज की उन्नति संभव नहीं हो सकती और निज भाषा के ज्ञान के बिना मन के संशय को भी दूर नहीं किया जा सकता।

'निज भाषा' का तात्पर्य भारतेन्दु हरिश्चंद्र के अनुसार उस भाषा से है जिसे जनसामान्य अपने लोकव्यवहार में प्रयोग करता है। भारतेन्दु जी से पूर्व की भी राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद तथा राजा लक्ष्मण सिंह साहित्यिक भाषा के संबंध में अपने मत प्रस्तुत कर चुके थे। राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद भारतेन्दु जी के गुरु थे और वह ऐसी भाषा का समर्थन करते थे जिसमें अरबी-फारसी के शब्दों की अत्यधिक भरमार थी और यह भाषा मुसलमानों तथा कचहरियों से संबंधित लोगों की भाषा का प्रतिनिधित्व करती थी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने यह सिद्ध किया है कि अंत तक उनकी भाषा उर्दू हो चुकी थी। उन्होंने लिखा है - "राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद क्रमशः उर्दू की ओर झुकते गए और अंत तक उनकी भाषा देवनागरी लिपि में लिखी हुई उर्दू बन गई।"⁴ दूसरी ओर राजा लक्ष्मण सिंह ऐसी भाषा के समर्थन में थे जिसमें संस्कृत और तत्सम शब्दों की भरमार थी और यह भाषा हिंद धर्म के शिक्षित विद्वानों का प्रतिनिधित्व करती थी। भाषा के यह दोनों ही रूप जनभाषा का प्रतिनिधित्व कर पाने में असमर्थ थे इसलिए भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने उस मध्यम शैली को अपनाया जिसमें सभी भाषाओं के लोकप्रिय शब्दों को स्थान दिया गया और जनभाषा का प्रतिनिधित्व किया।

भारतेन्दु के संबंध में यह भी मान्यता है कि वे संस्कृत-उर्दू आदि अन्य भाषाओं के विरोधी थे। परंतु उनकी भाषा संबंधी मान्यता का अध्ययन करने पर ऐसा कहना अत्यंत अनुचित मालूम पड़ता है क्योंकि वह किसी भी भाषा के विरोधी न होकर खड़ी बोली के पक्षधर थे। वे अगर उर्दू विरोधी होते तो 'रसा' नाम से उर्दू में गजलें न करते। उनका तो केवल इतना मानना था कि संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी, क्षेत्रीय बोलियों आदि को एक सीमा तक पीछे हटा दिया जाए ताकि खड़ी बोली हिंदी को साहित्य व समाज में उसका उचित स्थान मिल सके।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र की यह भाषा नीति उनके द्वारा रचित 'भारत दर्दशा' नाटक में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है जिसमें उन्होंने लोकजीवन में इस्तेमाल होने वाले शब्दों के साथ मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र का मानना था कि अन्य भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्य को यदि जनता तक पहुंचाना है तो उसे जनभाषा अर्थात् खड़ी बोली में अनुवाद करके जनता के लिए उपलब्ध कराना चाहिए। इसके लिए उन्होंने स्वयं अनुवाद करके इस क्षेत्र में अन्य साहित्यकारों का नेतृत्व किया। भारतेन्दु द्वारा अनूदित नाटकों में प्रमुख है - विद्यासुंदर

(बांग्ला भाषा के 'चौरपंचाशिका' का हिंदी अनुवाद), पाखंड विडंबन (संस्कृत भाषा में रचित 'प्रबोध चंद्रोदय' का अनुवाद), कर्पूर मंजरी (राजशेखर कवि कृत प्राकृत नाटक का अनुवाद), भारत जननी (बांग्ला की 'भारत माता' का अनुवाद), दुर्लभ बंधु (शेक्सपियर के 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का अनुवाद) आदि। भारतेन्दु की भाषाई नीति की सबसे प्रमुख विशेषता यह रही है कि उनके मन में सभी भाषाओं के प्रति आदर और सम्मान था। वे लोक प्रचलित शब्दों का बेझिझक प्रयोग करते थे चाहे वह शब्द संस्कृत का हो या उर्दू का या अंग्रेजी का। इस संबंध में यदि उनकी भाषा को पंचमेल की खिचड़ी कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी, क्योंकि भाषा का मिला-जुला रूप ही उसका स्वाभाविक रूप होता है। इन्हीं की भाषा शैली को आगे चलकर 'महात्मा गांधी' ने राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचार किया था जिसे 'हिंदुस्तानी शैली' कहा गया।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने उन सभी भाषा नीतियों का खंडन किया था जो जनभाषा अर्थात् खड़ी बोली को घृणा की दृष्टि से देखते थे। चाहे वह अंग्रेजों की भाषा नीति हो या मुसलमानों की। इस संबंध में रामविलास शर्मा ने कहा है- "भारतेन्दु की भाषा-नीति अंग्रेजी राज्य की नीति के विरुद्ध ही न थी, वह पांडितों-मौलवियों की नीति के विरुद्ध थी, जो जनसाधारण की भाषा को हिकारत की निगाह से देखते थे।"⁵

भारतेन्दु की भाषा नीति पर दृष्टि डालने पर ऐसा प्रतीत होता है कि साहित्य की भाषा के रूप में उन्होंने खड़ी बोली को तो अपना लिया था परंतु उस खड़ी बोली का स्वरूप निश्चित नहीं कर पाए थे। भाषागत त्रुटियां और व्याकरणिक अशुद्धियां भारतेन्दु युग की भाषा में सर्वथा विद्यमान थी, जिस पर भारतेन्दु मंडल के किसी भी रचनाकार ने विशेष ध्यान नहीं दिया। इसका कारण बताते हुए रामविलास शर्मा ने लिखा है कि "भारतेन्दु-युग की गद्य-शैली में परिष्कार की जरूरत थी। लेकिन यह जरूरत इतनी बड़ी न थी जितनी कि लोग समझते हैं.... जो परिष्कार आप करेंगे, वह कुछ शब्दों को लेकर होगा, वाक्यरचना, शब्दों के चुनाव, शैली के प्रवाह आदि में इससे ज्यादा अंतर न पड़ेगा।"⁶

इसके अतिरिक्त यदि भारतेन्दु हरिश्चंद्र की प्रारंभिक रचनाओं जैसे 'विद्यासुन्दर', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'सत्य हरिश्चंद्र' आदि पर ध्यान दिया जाए तो उनकी भाषा अपने स्वरूप को तलाशती हुई दृष्टव्य होती है और उनकी यह तलाश तब पूरी होती है जब वह घोषणा करते हैं कि 'हिंदी नई चाल में ढली'। हालांकि इस तलाश के पूर्ण हो जाने के बावजूद वे खड़ी बोली हिंदी को स्थिरता प्रदान नहीं कर सके और उसमें हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी तीनों ही शैलियों के तत्व विद्यमान थे।

इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि भारतेन्दु हरिश्चंद्र ऐसी भाषा का निर्माण करना चाहते थे जो सर्वमान्य और सुलभ हो। इसलिए वे भाषा के क्षेत्रीय रूप अर्थात् लोकभाषा को भी अपनाने की बात करते हुए नजर आते हैं- " इस हेतु ऐसे गीत बहुत छोटे-छोटे छंदों में और साधारण भाषा में बने, वरंच गंवारू भाषा में और स्त्रियों की भाषा में विशेष हों- और सब देश की भाषाओं में इसी अनुसार हो अर्थात् पंजाब में पंजाबी, बुंदेलखंड में बुंदेलखंडी, बिहार में बिहारी ऐसे जिन देशों में जिन भाषा का साधारण प्रचार हो उसी भाषा में ये गीत बने।"⁷

उक्त कथन में यह स्पष्ट: देखा जा सकता है कि भारतेन्दु हरिश्चंद्र की भाषा नीति में खड़ी बोली हिंदी को केवल साहित्य की भाषा के रूप में ही स्थापित करना नहीं था बल्कि वे इसे राष्ट्रीय चेतना से जोड़कर समाज का विकास करना चाहते थे। संभवतः उन्हें यह आभास था कि लोकभाषा और स्त्रियों की भाषा के बिना खड़ी बोली हिंदी को व्यापक रूप प्रदान नहीं किया जा सकता।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र की उक्त भाषा नीति के कारण ही भारतेन्दु युगीन साहित्य को जनसामान्य ने अपनाया और खूब पसंद भी किया। इस युग की भाषा में जो व्यंग्य, परिहास, चुटकुलेबाजी, आकर्षण और जीवंतता है वह इसे अन्य साहित्यिक युगों की तुलना विशिष्टता प्रदान करती है।

शायद यही कारण है कि इस युग के साहित्य की प्रशंसा करते हुए रामविलास शर्मा ने इसे 'जातीय साहित्य' की संज्ञा दी है। वे लिखते हैं- "भारतेन्दु-युग का साहित्य हिन्दी-भाषी जनता का जातीय साहित्य है, वह हमारे जातीय नवजागरण का साहित्य है। भारतेन्दु-युग की जिंदादिली, उसके व्यंग्य और हास्य, उसके सरल सरस गद्य और लोकसंस्कृति से उसकी निकटता से सभी परिचित है, ये उसकी जातीय विशेषताएँ हैं।"⁸

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतेन्दु हरिश्चंद्र का भाषा प्रेम एक व्यापक स्तर तक फैला हुआ है, जो 'निज भाषा' के माध्यम से राष्ट्रभाषा की भूमि को तैयार करने में प्रयत्नशील थे। अपनी रचनाओं और भाषणों के द्वारा उन्होंने सदैव जन सामान्य व अन्य रचनाकारों को हिंदी भाषा में साहित्य सृजन करने के लिए प्रेरित किया है। उनकी इस भाषा नीति के कारण ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उन्हें वर्तमान साहित्य परंपरा का प्रवर्तक माना है। वे लिखते हैं - "विक्रम की बीसवीं शताब्दी का प्रथम चरण समाप्त हो जाने पर जब भारतेन्दु ने हिन्दी गद्य की भाषा को सुव्यवस्थित और परिमार्जित करके उसका स्वरूप स्थिर कर दिया तब से गद्य साहित्य की परम्परा लगातार चली। इस दृष्टि से भारतेन्दुजी जिस प्रकार वर्तमान गद्य भाषा के स्वरूप प्रतिष्ठापक थे, उसी प्रकार वर्तमान साहित्य परंपरा के प्रवर्तक।"⁹

सन्दर्भ

- 1 हिंदी साहित्य का इतिहास - रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 301
- 2 हिंदी आलोचना का आलोचनात्मक इतिहास - डॉ. अमरनाथ,
- 3 महापुरुषों का स्मरण - हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 66
- 4 हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास - हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 205
- 5 भारतेन्दु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएं - रामविलास शर्मा, पृ. 53
- 6 भारत की भाषा समस्या - रामविलास शर्मा, पृ.32
- 7 भारतेन्दु ग्रंथावली - सं. ब्रजरत्नदास, तीसरा भाग, पृ. 935
- 8 भारतेन्दु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा- रामविलास शर्मा, तीसरे संस्करण की भूमिका
- 9 चिंतामणि भाग-1, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.187